प्रकाशित: 2 दिसंबर 2017 को दैनिक जागरण में प्रकाशित -

ऐतिहासिक प्रसंगों से खिलवाड़

शंकर शरण

इन दिनों फिल्म पद्मावती का विरोध करने वाले लोगों को 'फ्रिंज', पागल, मूढ़ वगैरह बताया जा रहा है। सचमुच मुंबया सिनेमा कितना बदल गया है। करीब साठ वर्ष पहले आई 'जागृति' फिल्म के प्रसिद्ध गीत आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं.. में ये पंक्तियां भी थीं, "ये प्रताप का वतन पला है आजादी के नारों पर। कूद पड़ी थीं यहां हजारों पद्मिनियां अंगारों पर। बोल रही है कण-कण से कुर्बानी राजस्थान की।" और आज तिहास के क्रूर शासकों को रूमानी बना कर पेश करना ही मुंबया फिल्मकारों की रचनात्मकता हो गई लगती है। ऐसे शासकों के मुख्य राजनीतिक, आक्रामक, मजहबी जुल्मों को छिपा कर झूठी प्रेम-कथाएं गढ़ने की कोशिश होती दिख रही है। मुगल काल के अपने विवरणों में बाबर से लेकर औरंगजेब तक का जो मुख्य चरित्र उभरता है उसका कभी ढंग से फिल्मी चित्रण नहीं हुआ। कश्मीर में जिहाद से हिंदू पंडितों के सफाये पर कोई फिल्म नहीं बनी, लेकिन कश्मीर के 'भटके हुए' जिहादियों पर कई रोमांटिक फिल्में बनीं। कश्मीरी आतंकवाद की पृष्ठभूमि में बनी फिल्मों में भी नायक जिहादी हैं और उन्हें सहानुभूतिपूर्वक पेश किया गया है।किसी फिल्म में कोई कश्मीरी पंडित नायक नहीं है, न पंडितों का संहार फिल्म के केंद्र में आया। यहां तक कि भारतीय सेना या उसके अधिकारी को भी कहीं-कहीं खलनायक की तरह प्रस्तुत किया गया। चित्ताैड़ और मेवाड़ के राजपूत, भील आदि वीरों ने कभी कल्पना न की होगी कि उन्हीं के देश के फिल्मकार कभी उन्हें छोटा दिखाकर खिलजियों को बड़ा बनाएंगे। जोधा अकबर या पद्मावती जैसी फिल्में अकल्पनीय मिथ्याकरण का प्रमाण हैं। फिल्म पद्मावती बिना देखे भी स्पष्ट है कि नायक राजा रतन सिंह नहीं हैं। सी तरह जोधा अकबर में भी कई तथ्य छिपाए गए थे। हॉलीवुड में सैकड़ों ऐतिहासिक फिल्में बनी हैं। कहीं वास्तविक पात्रों की सच्चाई से खिलवाड़ नहीं किया गया, लेकिन मुंबया फिल्मकारों ने एक्का-दुक्का फिल्में ही बनाई हैं और उन्हें भी निम्न स्तरीय फार्मूला में बदलकर रख दिया और तथ्यों को दरकिनार कर दिया। हैरत तो यह कि जो फिल्मी लोग बिना मेकअप की अपनी तस्वीर भी खींच लिए जाने पर शिकायत करते हैं या फिर किसी प्रमाणिक बातचीत को भी उद्धृत करने पर अनाधिकार प्रकाशन की नोटिस देने लगते हैं वे ही तिहास के वास्तविक पात्रों के साथ अनुचित मनमानियां करते हैं। क्या पद्मिनी, राणा रतन सिंह, राणा प्रताप या जोधाबाई का कोई व्यक्तित्व या सम्मान न था? स्वतंत्रता से पहले भारत में राणा प्रताप हमारे नायक होते थे। अब स्वतंत्र भारत में प्रताप को सताने वाले अकबर को नायक बना कर फिल्म बनती है।प्रवृत्ति को चुपचाप स्वीकार करना, बल्कि सकी वाहवाही करने को ही भले हिंदू का लक्षण बताया जाता है। जिसने विरोध किया उसे थोक भाव में पागल, बदमाश कहकर दुत्कारा जाता है। क्या यही हमारे फिल्मकारों की वीरता और सज्जनता है? बीते दशकों में मुंबया फिल्में भारतीय और हिंदू संवेदना

से खाली होती गई हैं। राजनीति वाला हिंदू-विरोधी सेक्युलरिज्म उनमें धीरे-धीरे भर गया है। हिंदू पुजारी प्राय: कुटिल, धूर्त, बलात्कारी दिखने लगे, जबकि मौलाना या पादरी सदैव सज्जन, फरिश्ते चरित्र होने लगे। यह तब, जब भारत में पादरियों और मौलानाओं की राजनीतिक सक्रियता और कुटलिता का आधिकारिक एवं ऐतिहासिक रिकॉर्ड मौजूद है। यह उसी सेक्युलरवादी, हिंदू-विरोधी बौद्धिक पैटर्न में है जिसमें अयोध्या ढांचे का ध्वंस तो मुद्दा बनता है, पर मंदिरों का ध्वंस कभी मुद्दा नहीं बनता, बल्कि यह तथ्य ही छिपाया जाता है। लगता है कि न फिल्मकारों के लिए रामजन्म-भूमि या बामियान विध्वंस कभी हुए ही नहीं। विरोध करने वाले हिंदू संगठनों के लिए हर तरह के अपशब्द तक कहे जाते हैं, किंतु जब मुस्लिम संगठन विरोध करते हैं तो उलटे फिल्मकार ही पीछे हटता है। जैसे मकबूल फिदा हुसैन की मीनाक्षी फिल्म के एक गाने पर हुआ था या तसलीमा नसरीन की कहानी पर बने टीवी सीरियल दुसहवास के साथ हुआ। जब ऐसा होता है तब मुंबया फिल्म बिरादरी फिल्म या सीरियल का विरोध करने वालों को मूर्ख, बदमाश 'फ्रिंज' नहीं कहती। स प्रवृत्ति को एक समुदाय की भद्रता का दुरुपयोग और दूसरे की उग्रता का सम्मान करने के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि कायरता कोई चीज है, तो यही है।
पद्मावती जैसी फिल्मों के विरोध पर फिल्मी बिरादरी और बुद्धिजीवियों की तीखी प्रतिक्रिया मामले को और बिगाड़ती है। हिंदू आपत्तियों पर सदैव असंयत टिप्पणियां दिखाती हैं कि सामुदायिक संवेदना, इतिहास के तथ्य या रचनात्मक स्वतंत्रता पर कोई समान, संतुलित पैमाना नहीं है। ऐसे हिंदू संगठनों का क्रोध बढ़ता है, क्योंकि वे बौद्धिक, फिल्मी और राजनीतिक लोगों का दोहरापन वर्षो से देख रहे हैं। फिर भी जब वे अपवादस्वरूप कभी आपत्ति करते हैं तो उसे सुनने-समझने के बदले उलटे तानों, गालियों की बारिश शुरू हो जाती है। कहीं तो किसी संस्था का एक बयान आते ही कोई फिल्म वापस ले ली जाती है या फिर एक छोटा जुलूस निकलते ही किसी लेखक का आगमन प्रतिबंधित हो जाता है और दूसरी ओर कोई हिंदू पर्व-त्योहार या मंदिर जाने का भी मजाक उड़ाना कलात्मक अभिव्यक्ति की ठसक से चलता है। देश-भर में चर्च-प्रचारक पादरियों की 'चंगाई-सभा' होती है, जिसमें खुलेआम लोगों को बरगलाकर धर्मांतरण कराने का यत्न होता है। आखिर से किसी फिल्म में अंधविश्वास का उदाहरण क्यों नहीं बताया जाता? अनेक गंदे-भद्दे दृश्य मंदिरों की पृष्ठभूमि में फिल्माए गए हैं। वही दृश्य किसी चर्च या मस्जिद के सामने फिल्माने का विचार किसी फिल्मकार को नहीं आता। यह सब संयोग नहीं है। न ही वीरता या बुद्धिमत्ता का उदाहरण है। दुर्भाग्य तो यह है कि जिस हिंदू धर्म का मुंबया फिल्मों में नियमित मजाक उड़ाया जाता रहा है उसी हिंदू धर्म-दर्शन पर आधारित एक से एक प्रसिद्ध हॉलीवुड फिल्में बनी हैं। जैसे-स्टार वार्स, मैटिक्स, डेड एगेन, लूसी आदि सांस-फिक्शन फिल्में। कई में यह उल्लेख करकेकहा गया है कि भारत और भारतीयों के ज्ञान-चिंतन में यह सिद्धांत था, जिस पर कथानक आधारित है। नके अलावा पुनर्जन्म, कर्म, माया तथा बौद्ध कथानकों पर बनी फिल्में अलग हैं, जिनका भी मूल चिंतन स्रोत हिंदू ही है। शॉर्टकट टु हैपीनेस और ट प्रे लव जैसी कई मानवीय भाव प्रधान फिल्में पूरी तरह हिंदू जीवन-दर्शन पर आधारित हैं। वस्तुत: कुछ हॉलीवुड थ्रिलर में भी योग, गीता के श्लोकों और संदेश को महत्वपूर्ण स्थान देकर फिल्में बनी मिलती हैं। क्या यह सब हमारे मुंबया फिल्मकारों को मालूम नहीं? लगता है कि मुंबया फिल्मकारों में हिंदू चिंतन, दर्शन, जीवन आदर्शो को समझने की क्षमता ही नहीं है। अपने ऐसे

घोर अज्ञान में ही वे हिंदू प्रतीकों, स्थानों और ऐतिहासिक पात्रों के साथ ऐसा विद्वेषपूर्ण खिलवाड़ करते रहे हैं। यह सब जो भी हो, समें कोई वीरता या सम्माननीय बात नहीं है।

(लेखक राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)